बिहार की राजनीति और जाति : एक व्याख्या

Tapan Kumar Das, Prof.(Dr.) Anant Prasad Gupta
Department of History, Purnea University, Purnea
Corresponding Author: tapankumardas7991@gmail.com

Abstract:: पिछले सौ वर्षों से बिहार निरंतर सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल का केंद्र रहा है। यहाँ किसान आंदोलनों, हिंसक जन-उभारों, लोकप्रिय एकजुटताओं के दमन और सामाजिक अशांति का लंबा इतिहास रहा है। बार-बार यह स्थिति भी उत्पन्न हुई कि राज्य पूरी तरह टूटने की कगार पर दिखाई दिया और केवल कड़े शासन या अधिनायकवादी हस्तक्षेप के सहारे ही इसे "शासनीय" (governable) बनाया जा सका। कई बार बिहार को एक "विफल राज्य" (Failed State) के रूप में वर्णित किया गया है , जैसा कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति साहित्य में इस शब्द का प्रयोग होता है। इसे यह उदाहरण भी माना गया कि भारत जैसे देश में क्यों उदार लोकतंत्र (liberal democracy) मज़बूती से संस्थागत नहीं हो पाया।

[Das, T.K. and Gupta, A.P. **बिहार की राजनीति और जाति : एक व्याख्या** . *The International Journal of Interpretation, Observation and Analysis*, 2025; Volume 3, Issue 1:271-289 (July-September). ISSN 2349-0713, Peer-reviewed (online/offline), Refereed, Indexed and International Journal (Since 2013), Global Impact Factor: 5.776

प्रमुख शब्द: बिहार, सरकार, बिहार की राजनीति और जाति

परिचय

इस तथाकथित विफलता की एक महत्वपूर्ण वजह जाति की राजनीति को माना गया है। अक्सर यह तर्क दिया गया कि जाति राजनीति के आधुनिकीकरण और लोकतंत्रीकरण की राह में बाधा है। यह सामाजिक संघर्षों के समाधान में रुकावट डालती है और राज्य को स्थिर रूप से संचालित होने से रोकती है। यदि स्वतंत्रता के बाद बिहार के राजनीतिक इतिहास को दो शब्दों में समेटना हो, तो वे होंगे – **"सवर्ण" (Forward Castes) और "पिछड़ा" (Backward Castes)**।

बिहार की राजनीति में जाति का प्रभाव

जाति ने बिहार की राजनीति और समाज से कभी विलुप्त नहीं हुई। बल्कि समय-समय पर इसने अपने प्रभाव को नए रूपों में साबित किया है। यह केवल एक सामाजिक श्रेणी नहीं , बल्कि एक **राजनीतिक संसाधन** (Political Resource) बन गई, जिसके माध्यम से विभिन्न राजनीतिक आंदोलनों को संगठित किया गया।

ऐतिहासिक प्रमाण दर्शाते हैं कि औपनिवेशिक काल में भी बिहार में जातिगत संगठनों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रांतीय स्तर पर जातीय सभाएँ बनीं, जिन्होंने समाज सुधार और शैक्षणिक-नौकरी संबंधी अवसरों को बढ़ाने का काम किया। उदाहरण के लिए –

- बिहार कायस्थ प्रांतीय सभा (1889)
- भूमिहार ब्राह्मण सभा
- अखिल भारतीय कुर्मी महासभा (1894)
- गोपजातीय सभा (1909)

इन संगठनों का उद्देश्य केवल सामाजिक सुधार नहीं था, बल्कि उपयुक्त जाति समूहों को सरकारी नौकरियों और सार्वजनिक पदों तक पहुँचाना भी था। इस प्रकार जाति-आधारित संगठनों ने समाज और राजनीति में अपनी गहरी पैठ बनाई।

जातिगत संघर्ष और राजनीतिक गठबंधन

बिहार के इतिहास में बार-बार जातिगत गठबंधनों और संघर्षों के उदाहरण मिलते हैं। समाज की विभिन्न जातियाँ सत्ता और सामाजिक प्रभुत्व के लिए निरंतर प्रतिस्पर्धा करती रहीं। इसलिए बिहार की राजनीति को जाति के आधार पर समझना सबसे उपयोगी दृष्टिकोण माना गया। हाल के वर्षों में विकास के तमाम प्रयासों के बावजूद भी चुनावी राजनीति और जनचर्चा में जाति अब भी सबसे प्रमुख कारक बनी हुई है

(Jha और Pushpendra, 2012; NP और Mishra, 2013)।

बिहार की जातीय राजनीति के दो चरण

बिहार की राजनीति को मोटे तौर पर दो चरणों में बाँटा जा सकता है –

1. **पूर्व-1990 चरण**
   इस दौर में सवर्ण जातियाँ – ब्राह्मण, भूमिहार, राजपूत और कायस्थ – राज्य की राजनीति, समाज, नौकरशाही और न्यायपालिका पर वर्चस्व रखती थीं। यद्यपि ये जातियाँ संख्या में अपेक्षाकृत कम थीं, लेकिन इनका प्रभाव बहुत अधिक था। भूमिहीन और पिछड़ी जातियाँ (OBCs) बड़ी संख्या में होने के बावजूद सत्ता और संसाधनों से वंचित थीं।
2. **1990 के बाद का चरण** *(जिसका उल्लेख आगे विस्तार से किया जा सकता है)*
   इस दौर में मंडल आयोग की सिफारिशें लागू हुईं, लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में पिछड़ी जातियों (विशेषकर यादवों) का उभार हुआ, और जातीय राजनीति का समीकरण पूरी तरह बदल गया। आगे चलकर नीतीश कुमार ने "सामाजिक इंजीनियरिंग" (social engineering) के जरिये अति पिछड़ों और दलितों को भी राजनीतिक रूप से संगठित किया।

बिहार की जनसंख्या में जातिगत अनुपात (अनुमानित)

CSDS (Centre for the Study of Developing Societies) द्वारा बिहार में किए गए विभिन्न पोस्ट-पोल सर्वे के आधार पर जातिगत समूहों का अनुमानित अनुपात निम्नलिखित है:

जाति/समुदाय	जनसंख्या का अनुमानित प्रतिशत
ब्राह्मण (Brahmin)	5%
भूमिहार (Bhumihar)	4%
राजपूत (Rajput)	5%
अन्य सवर्ण (कायस्थ आदि)	1%
यादव (Yadav)	15%
कुर्मी व कोइरी (Kurmi & Koeri)	11%
अन्य पिछड़ा वर्ग (Other OBCs)	24%
दलित (Dalits – Census)	16%
मुसलमान (Muslims – Census)	17%

स्रोत: CSDS द्वारा बिहार में किए गए विभिन्न *Post Poll Surveys* (DOI: 10.35629/7722-1209125138, IJHSSI जर्नल)।

बिहार में दलित राजनीति की प्रारंभिक पृष्ठभूमि 1913 से स्वतंत्रता-पूर्व काल

सन् **1913** से ही बिहार के दलितों ने संगठित होकर अपनी आवाज़ उठानी शुरू की। जातीय संगठनों (Caste Associations) के माध्यम से सामाजिक-राजनीतिक पहचान का निर्माण प्रारंभ हुआ। यह वही दौर था जब पूरे भारत में जाति-आधारित संगठनों का उदय हो रहा था।

स्वतंत्रता के बाद और 1952 का पहला चुनाव

भारत की स्वतंत्रता के बाद जब 1952 में पहला आम चुनाव हुआ, उस समय गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने **अछूत-उन्मूलन अभियान** (Anti-untouchability campaign) चलाया था।

हालांकि इस प्रयास का विरोध उच्च जातीय परंपरावादी वर्गों (orthodox caste-Hindu sections) ने कड़ा किया।

भारत के अन्य हिस्सों में जहाँ डॉ. भीमराव आंबेडकर के नेतृत्व में दलित चेतना का एक वैचारिक आंदोलन उभरा , वहीं बिहार में इस प्रकार का स्वतंत्र दलित वैचारिक आंदोलन अपेक्षाकृत कमजोर था। इसके बावजूद कांग्रेस पार्टी के भीतर दलित नेताओं ने अपनी सक्रिय भूमिका निभाई।

दलित नेतृत्व और कांग्रेस

- बिहार के प्रमुख दलित नेता जैसे **जगजीवन राम** और **जग्लाल चौधरी** ने 1940 और 1950 के दशकों में कांग्रेस नेतृत्व पर दलितों की जायज़ और वाजिब माँगों को लेकर लगातार दबाव डाला।
- उनका मानना था कि कांग्रेस ही मुख्यधारा की राजनीतिक शक्ति है और दलितों के विकास की संभावनाएँ तभी हैं जब राष्ट्रीय स्तर के बड़े नेताओं को प्रभावित किया जाए तथा दलित जातियों में एकता का भाव जगाया जाए।
- इस कारण **1952 तक दलित बड़ी उम्मीदों के साथ कांग्रेस के साथ बने रहे।**

सरकारी आँकड़े और जनसंख्या संरचना

राष्ट्रीय दलित आइकन की खोज और कांग्रेस का प्रभुत्व

आंबेडकर बनाम गांधी – बिहार का परिदृश्य

भारत के अन्य हिस्सों —जैसे महाराष्ट्र या आंध्र प्रदेश—में दलित आंदोलनों को दलित इतिहासकारों ने विशेष महत्व दिया है। इसका एक बड़ा कारण यह था कि वहाँ के आंदोलनों को **डॉ. भीमराव आंबेडकर** जैसी करिश्माई और वैचारिक हस्तियों का नेतृत्व प्राप्त था।

इसके विपरीत , बिहार में दलित आंदोलनों की प्रेरणा आंबेडकर से नहीं बल्कि **गांधी और उनके अनुयायियों** से मिली।

- आंबेडकर का नाम बिहार के दलितों में सम्मानित था, लेकिन उनकी राजनीतिक और वैचारिक अहमियत बिहार में **1980 के दशक के बाद** ही गहरी हुई , जब पूरे देश में "राष्ट्रीय दलित नायक " (National Dalit Icon) की खोज प्रारंभ हुई।
- इससे पहले बिहार का दलित आंदोलन कांग्रेस के प्रभाव और नियंत्रण में ही चलता रहा।

कांग्रेस और दलित नेतृत्व

स्वतंत्रता के बाद , बिहार के दलित **1952 तक कांग्रेस के साथ जुड़े रहे,** क्योंकि उनमें यह उम्मीद थी कि कांग्रेस ही उनके हितों की रक्षा कर सकती है।

- बिहार के दलित नेता **जगजीवन राम** और **जग्लाल चौधरी** ने इस दौर में कांग्रेस नेतृत्व पर दलितों की जायज़ माँगों को उठाने का निरंतर दबाव डाला।
- कांग्रेस को ही वे मुख्यधारा की राजनीति का केंद्र मानते थे, और यही सोचते थे कि दलितों की बेहतरी उसी के भीतर संभव है।

पिछड़े-दलित नेताओं की आवाज़ और आंदोलन

इस दौर में दलित और पिछड़े वर्गों के नेताओं ने **राजनीतिक प्रतिनिधित्व** (Political Representation) की मांग खुलकर रखनी शुरू कर दी।

- प्रमुख पिछड़े वर्ग के नेता **वीरचंद पटेल** (1952 में उपमंत्री , 1957 में स्वास्थ्य और कृषि मंत्री , 1961 में वित्त मंत्री) ने 1953 में कहा:

"पिछड़ा वर्ग आंदोलन भारत का सबसे बड़ा आंदोलन है। यह ब्रिटिश शासन के खिलाफ हुए आंदोलन से भी बड़ा है। भारत में जो क्रांति आने वाली है , उसकी आवाज़ जगजीवन राम की आवाज़ है। "

(पिछड़ा वर्ग, 18 मई 1953; उद्धृत—चौधरी और श्रीकांत, 2005)

- मार्च 1953 में मुंगेर जिले के तरापुर (शहीद बाग) में हुए **पहले पिछड़ा वर्ग जिला सम्मेलन** में 50,000 से अधिक लोग उपस्थित थे।
    - यहाँ नेताओं ने जो भाषण दिए , उनमें आक्रामकता और आत्मविश्वास दोनों झलकते थे।
    - एक भाषण में कहा गया: "कांग्रेस किसी जाति-समुदाय की बपौती नहीं है … भारत की आज़ादी में दलित और पिछड़े वर्ग ने भी अहम बलिदान दिया है… अब देश की बागडोर अपने हाथ में लेने का, अपना अधिकार और उचित हिस्सा माँगने का समय आ गया है , दया की भीख माँगने का नहीं। जगजीवन राम भारत के स्टालिन हैं। जैसे रूस में एक भूखे-नंगे चमार के लड़के ने क्रांति कर दी, वैसे ही जगजीवन राम भारत की काया पलट देंगे। वे जो मंत्र हमें दे रहे हैं, वही मंत्र फ्रांस की जनता को रूसो से मिला था।"

यह भाषण उस दौर के दलित-पिछड़े नेतृत्व की **क्रांतिकारी सोच और तेवर**को प्रकट करता है।

आंबेडकर का अप्रत्यक्ष प्रभाव

हालाँकि बिहार में आंबेडकर जैसे प्रत्यक्ष दलित नेता या वैचारिक आंदोलन का अभाव था , फिर भी उनके विचारों ने पूरे भारत में दलितों के लिए चेतना का माहौल बनाया।

- बिहार में उपलब्ध स्रोत बताते हैं कि यहाँ दलित राजनीति का स्वरूप **कई छोटे-बड़े सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों के सामूहिक प्रभाव** का परिणाम था।
- यह सही है कि बिहार में आंबेडकर जैसा प्रभावशाली नेतृत्व नहीं था , लेकिन फिर भी दलित और पिछड़े नेताओं ने कांग्रेस के भीतर से अपनी राजनीतिक दावेदारी पेश की और धीरे-धीरे आक्रामकता के साथ अपनी आवाज़ उठाई।

- स्वतंत्र भारत में बिहार की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जातियों (SC) की हिस्सेदारी **12–15%** के बीच रही है, जबकि अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) की हिस्सेदारी **51–52%** रही (Blair, 1980, p. 5)।
- **1961 की जनगणना** के अनुसार बिहार की जनसंख्या में अनुसूचित जातियाँ **14%** थीं (Prasad, 2005, p. 12)।
- **1941 में** बिहार में दलितों की कुल संख्या **43 लाख** से अधिक थी , जो **1951 में बढ़कर 50 लाख** हो गई, अर्थात् राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग **12.6%**।

प्रमुख अनुसूचित जातियाँ (Census के अनुसार)

- **चमार (Chamar)** – 23.8 लाख
- **दुसाध (Dusadh)** – 21 लाख
- **मुसहर (Mushahar)** – 11 लाख
- **भुइया (Bhuiya)** – 4.38 लाख
- **धोबी (Dhobi)** – 4.33 लाख

विश्लेषण

1. बिहार में दलित आंदोलन का शुरुआती स्वरूप **संगठनात्मक** (associational) था, जबकि महाराष्ट्र या पश्चिमी भारत की तरह वैचारिक (ideological) नहीं।
2. गांधी और कांग्रेस ने दलित मुद्दों को उठाया, लेकिन उनका दृष्टिकोण सुधारवादी (reformist) था, क्रांतिकारी (revolutionary) नहीं।
3. जगजीवन राम जैसे नेताओं ने दलितों की राजनीति को मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया , जिससे दलित कांग्रेस के साथ लंबे समय तक टिके रहे।
4. आँकड़ों से स्पष्ट है कि दलितों की जनसंख्या 12–15% के बीच स्थिर रही , लेकिन इनका सामाजिक-राजनीतिक

प्रतिनिधित्व उनकी संख्या के अनुपात में नहीं बढ़ पाया।

5. चमार, दुसाध और मुसहर जैसे बड़े दलित समूह बिहार की राजनीति में **मुख्य वोट-बैंक** की तरह उभरे।

एक संक्षिप्त अवलोकन

बिहार की जातिगत राजनीति का इतिहास बहुत लंबा और जटिल है , जिसे पूरी तरह समझाने के लिए कई पुस्तकों की आवश्यकता होगी। आम पाठकों (विशेषकर जो बिहार से नहीं हैं) के लिए यह इतिहास प्रायः **लालू प्रसाद यादव के उदय** से शुरू होकर वहीं समाप्त हो जाता है। परंतु यह धारणा पूरी तरह गलत है।

प्रारंभिक दौर (1920 का दशक – आज़ादी के बाद)

- बिहार में जातिगत राजनीति की शुरुआत **जनेऊ आंदोलन (1920 का दशक)** और **त्रिवेणी संघ** से हुई थी।
- इसके बाद राम मनोहर लोहिया , जयप्रकाश नारायण और कर्पूरी ठाकुर जैसे समाजवादी नेताओं ने इस आंदोलन को आगे बढ़ाया।
- इन्हीं आंदोलनों और नेताओं की राजनीतिक धारा से लालू प्रसाद यादव का उदय हुआ , और बाद में नीतीश कुमार का भी राजनीतिक उद्भव इसी परंपरा से जुड़ा रहा।

कांग्रेस का प्रभुत्व और ऊँची जातियाँ

- स्वतंत्रता के बाद (1947-67) बिहार की राजनीति में **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस** का प्रभुत्व रहा।
- इस दौरान , कांग्रेस संगठन और नेतृत्व पर मुख्यतः ऊँची जातियों (ब्राह्मण , राजपूत, भूमिहार, कायस्थ) का कब्ज़ा था।
- उदाहरण के तौर पर, 1934 से 1946 तक के बीच, **बिहार प्रदेश कांग्रेस समिति में कोई भी निचली जाति का सदस्य नहीं था।**
- 1952 से 1962 तक कांग्रेस के लगभग **40% विधायक केवल ऊँची जातियों से आते थे** , और ये ही लोग दलितों तथा मुसलमानों के "वोट-बैंक" को नियंत्रित करते थे।

भूमि सुधार और जातिगत गठजोड़

- 1950 के **बिहार भूमि सुधार अधिनियम** ने परंपरागत ज़मींदारी ढांचे को तोड़ा और एक "नए वर्ग" का निर्माण किया।
- लेकिन असल बदलाव नहीं आया। यह नया वर्ग भी ऊँची जातियों से प्रभावित नेटवर्क और जातिगत संरचना पर आधारित था।

समाजवादियों का उदय

- 1948 में जब समाजवादी कांग्रेस से अलग हुए , तब उन्होंने "पिछड़े वर्ग के कृषक समूहों " को अपने राजनीतिक आधार बनाने का लक्ष्य रखा।
- राम मनोहर लोहिया ने नारा दिया – **"पिछड़ा पावे सौ में साठ "** (यानी पिछड़ों को 60% राजनीतिक व सामाजिक लाभ मिलना चाहिए)।
- इस नारे को कर्पूरी ठाकुर (नाई जाति से आने वाले उभरते समाजवादी नेता) ने जन-जन तक पहुँचाया।
- इस समय तक नई पीढ़ी कांग्रेस से मोहभंग हो रही थी और नए विकल्पों की तलाश में थी।

1967 का मोड़

- 1967 में बिहार में पहली बार **गैर-कांग्रेसी सरकार** बनी।
- राष्ट्रीय चुनावों में कांग्रेस के अनुसूचित जाति सांसदों की संख्या घटकर आधे से भी कम (23/45) रह गई।
- समाजवादियों और वामपंथियों (कम्युनिस्टों) ने दलित और पिछड़े वर्गों का प्रतिनिधित्व बढ़ाया।

1968-69 : नई राजनीतिक उथल-पुथल

- 1968 में बिहार की संविद सरकार (महामाया प्रसाद सिन्हा और कर्पूरी ठाकुर) गिर गई।
- इसके बाद बी. पी. मंडल (समाजवादी) बिहार के पहले **पिछड़े वर्ग से मुख्यमंत्री** बने।
- वहीं, बी. पी. शास्त्री कांग्रेस के पहले **अनुसूचित जाति से मुख्यमंत्री** बने।
- 1969 के मध्यावधि चुनावों में अनुसूचित जातियों ने कांग्रेस से और दूरी बना ली , और कांग्रेस के एससी सांसदों की संख्या घटकर केवल 15 रह गई।

1970 का दशक

- 1967 से 1971 तक बिहार में चार साल के भीतर **पाँच मुख्यमंत्री पिछड़ी जातियों से और दो मुख्यमंत्री अनुसूचित जातियों से** बने।
- लेकिन यह सामाजिक क्रांति नहीं थी , बल्कि राजनीतिक समझौतों का नतीजा थी। सामाजिक सत्ता अब भी ऊँची जातियों के हाथों में ही रही।
- 1972 में बांग्लादेश युद्ध के बाद हुए चुनावों में कांग्रेस ने फिर से मजबूती पाई।
- इसी समय , 1970 के दशक में **नक्सलवादी आंदोलन** ने बिहार के दलितों और किसानों में पकड़ बनाई।
- यह आंदोलन विशेषकर भोजपुर , पटना, गया और औरंगाबाद ज़िलों में 1976 तक सक्रिय रहा और 1980 के दशक तक यहाँ एक "नक्सल बेल्ट" बन गई।

कर्पूरी ठाकुर और कांग्रेस का पतन (1977)

जेपी (जयप्रकाश नारायण) आंदोलन और इंदिरा गांधी की इमरजेंसी के बाद हुए विधानसभा और लोकसभा चुनावों (1977) में कांग्रेस की स्थिति बेहद कमजोर हो गई।

- लोकसभा में कांग्रेस को बिहार से **एक भी सीट नहीं मिली**।
- राज्य विधानसभा में कांग्रेस को केवल **324 में से 57 सीटें** मिलीं।

इन 57 विधायकों में जातीय आधार पर सबसे अधिक संख्या **यादवों (10)** की थी। उसके बाद क्रमशः:

- ब्राह्मण – 9
- राजपूत – 7
- भूमिहार – 6
- कोईरी – 4
- कुर्मी – 2

इस परिस्थिति में कर्पूरी ठाकुर ने **जनता पार्टी** की ओर से सरकार बनाई और वे बिहार के मुख्यमंत्री बने।

मुँगरीलाल आयोग और पिछड़ों का वर्गीकरण

1971 में **मुँगरीलाल आयोग** गठित हुआ था , जिसने 1975 में अपनी रिपोर्ट सौंपी।

- इस आयोग ने पहली बार बिहार में पिछड़ी जातियों की स्थिति का अध्ययन किया।
- रिपोर्ट में सुझाव दिया गया कि पिछड़ों को दो भागों में बाँटा जाए –
  1. **अन्य पिछड़ा वर्ग (OBCs)**
  2. **अत्यंत पिछड़ा वर्ग (MBCs)**

1978 में मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर ने इस रिपोर्ट को लागू किया और राज्य स्तर पर पिछड़ों के लिए **25% आरक्षण** की व्यवस्था की।

परिणाम और सामाजिक प्रतिक्रिया

इस आरक्षण नीति के लागू होने पर 'सवर्ण' (forward caste) युवाओं ने व्यापक दंगे किए। नतीजतन ठाकुर की सरकार गिर गई।

- 1979 में उनकी जगह **रामसुंदर दास** मुख्यमंत्री बने।
- उनकी कैबिनेट में 50% से अधिक मंत्री 'सवर्ण' जातियों से थे।
- 1980 में इंदिरा गांधी फिर से सत्ता में लौटीं और दास सरकार को बर्खास्त कर दिया गया। कांग्रेस 167 सीटें जीतकर बिहार में सत्ता में वापस आई।

कांग्रेस और सवर्ण मुख्यमंत्री

1980 से लेकर 1989 तक कांग्रेस लगातार **'सवर्ण' जातियों से मुख्यमंत्री नियुक्त करती रही** –

- तीन बार ब्राह्मण मुख्यमंत्री बने।
- दो बार ठाकुर (राजपूत) मुख्यमंत्री बने।

इस पूरे दशक में:

- जनता पार्टी की अंदरूनी खींचतान और इंदिरा गांधी की हत्या के बाद उपजे सहानुभूति लहर ने कांग्रेस को मदद की।
- लेकिन **पिछड़ों का राजनीतिक सशक्तिकरण अभी अधूरा** रहा।
- विधानसभा में पिछड़े वर्ग की उपस्थिति स्थिर तो रही , लेकिन प्रभावशाली नहीं हो सकी।

सामाजिक उथल-पुथल और जातीय सेनाएँ

1972 से 1990 के बीच बिहार में **सशस्त्र संघर्षों और जातीय सेनाओं का उदय** हुआ।

- मोहन बिन्द (कैमूर क्षेत्र) और कैलाश मंडल (दियारा क्षेत्र) जैसे विद्रोही नेता सक्रिय हुए।
- 1988-89 के बीच कई जातीय सेनाएँ बनीं:
    - **लोरिक सेना (भूमिहारों की सेना)**
    - **कुँवर सेना (राजपूतों की सेना)**
    - **लाल सेना (बेज़मीन मज़दूरों की सेना)**
    - और कई हिस्सों में **नक्सली समानांतर सरकार** चलने लगी।

अतुल कोहली ने अपनी पुस्तक *Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability* में लिखा है कि बिहार की अशांति दो समानांतर संघर्षों का परिणाम थी –

1. **राजनीतिक संघर्ष** – सवर्ण बनाम पिछड़े वर्ग।
2. **सामाजिक-आर्थिक संघर्ष** – भूमिहीन दलित/पिछड़े बनाम भूमिधारी सवर्ण और पिछड़े।

लालू प्रसाद यादव का उदय

इन्हीं परिस्थितियों में , जब कर्पूरी ठाकुर को विपक्ष के नेता पद से हटाया गया , तब उनकी जगह **लालू प्रसाद यादव** विपक्ष के नेता बने।

- धीरे-धीरे लालू यादव ने स्वयं को पिछड़ा वर्ग आंदोलन का प्रमुख चेहरा बना लिया।
- 1990 में वे बिहार के मुख्यमंत्री बने और अगले **15 वर्षों तक सत्ता पर काबिज रहे।**

1920 और 1930 का दशक : जनेऊ आंदोलन और त्रिवेणी संघ

फ्रांसिन फ्रैंकल के शब्दों में , बिहार में *"ब्राह्मण, भूमिहार और राजपूतों ने कम-से-कम एक हज़ार वर्षों तक समाज पर प्रभुत्व बनाए रखा"*। लेकिन 1920 के दशक में इन्हें चुनौती मिली तथाकथित 'ऊँच शूद्रों ' यानी यादव , कुर्मी और कोइरी जातियों से।

जनेऊ आंदोलन (Janeyu Andolan)

1920 के शुरुआती वर्षों में यादवों और अन्य पिछड़ी जातियों ने *संस्कृतिकरण (Sanskritisation)* की प्रक्रिया अपनाई।

- इसका सबसे बड़ा प्रतीक था **जनेऊ धारण करना** , जो परंपरागत रूप से केवल ब्राह्मणों और ऊँची जातियों का धार्मिक चिन्ह माना जाता था।
- इस कदम से यादव , कुर्मी और कोइरी जातियों ने अपने सामाजिक दर्ज़े को ऊँचा उठाने और 'सवर्ण' परंपरा में प्रवेश करने का प्रयास किया।

लेकिन इसके परिणामस्वरूप ऊँची जातियों , विशेषकर ब्राह्मणों की कड़ी प्रतिक्रिया सामने आई।

- उत्तर बिहार में कई स्थानों पर हिंसक और अहिंसक टकराव हुए।
- 1921 से 1925 के बीच यह आंदोलन अपने चरम पर पहुँचा।

यह आंदोलन यादवों के लिए एक **सामाजिक-सांस्कृतिक वैधता** लेकर आया , जिसने आगे चलकर उन्हें **राजनीतिक पहचान** दिलाई।

जातिगत सामाजिक स्थिति

- यादव (जिन्हें गोआला और अहीर भी कहा जाता है) संख्या में सबसे बड़ी जाति थे। वे खेती-किसानी करने के साथ-साथ दूध और पशुपालन का कार्य करते थे।
- कुर्मी और कोइरी भी बिहार की बड़ी कृषक जातियाँ थीं।
- कोइरी विशेष रूप से *मेहनती और कुशल कृषक, बेहतरीन बटाईदार* और *बाज़ार के लिए सब्ज़ी उगाने वाले* माने जाते थे।

त्रिवेणी संघ और अन्य संगठन

इस दौर में पिछड़ी जातियों और दबे-कुचले तबकों के लिए कई संगठन उभरे:

- किसान सभा
- यादव महासभा
- त्रिवेणी संघ
- मोमिन कॉन्फ्रेंस

ये संगठन सामाजिक व आर्थिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष के प्रतीक बने।

सन् 1921 की जनगणना रिपोर्टों के आधार पर एम.एन. श्रीनिवास ने दर्ज किया कि ऊँची जातियों की प्रतिक्रिया बहुत हिंसक थी और इसकी जड़ में था —

- निचली जातियों के कृषकों का *आर्थिक शोषण*
- विशेषकर यादवों पर *जमींदारों द्वारा किया गया उत्पीड़न*

बिहार के सबसे बड़े कांग्रेसी नेता , डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने भी स्वीकार किया कि *"हिंदुओं में परंपरावाद (Orthodoxy) पूरी तरह हावी था।"* कांग्रेस पर कायस्थों का प्रभुत्व था , वहीं किसान सभा जैसे संगठनों में ब्राह्मण और भूमिहारों का दबदबा रहा।

इस स्थिति में यह स्वाभाविक था कि एक ऐसा संगठन उभरे, जो इस वर्चस्व को चुनौती दे और लंबे समय तक असर डाले।

समाजवादी, नक्सलवादी और जाति की राजनीति – राम मनोहर लोहिया

कांग्रेस के मज़बूत वर्चस्व का विकल्प तैयार करने के लिए डॉ. राम मनोहर लोहिया ने **पिछड़ी जातियों के कृषक समूहों** को अपने राजनीतिक आधार के रूप में चुना।

- पिछड़ी जातियों के भीतर भी नई पीढ़ी और उभरते समूह अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं के प्रतिनिधित्व की तलाश में थे।
- इसी दौर में लोहिया का प्रसिद्ध नारा सामने आया:
  "पिछड़ा पावे सौ में साठ , सोशलिस्ट ने बाँधी गाँठ। "
  (अर्थात् – 100 में 60% हिस्सेदारी पिछड़ों और वंचितों को मिलेगी।)

इस नारे को लोकप्रिय बनाया **कर्पूरी ठाकुर** ने, जो स्वयं नाई जाति (निचली शूद्र जाति) से आते थे और धीरे-धीरे बिहार के प्रमुख समाजवादी नेता के रूप में उभरे।

लोहियावाद (Lohia-ism)

लोहिया ने अपने *नए समाजवाद (New Socialism)* में—

- **उदार जनवाद (Liberal Populism)** और **गांधीवाद** को बरकरार रखा।
- लेकिन **मार्क्सवाद** को उन्होंने अपनी समझ से बदल दिया।
- यह समझ जाति और पिछड़ों की सामाजिक-राजनीतिक चेतना को समाजवाद से जोड़ने वाली थी।

उन्होंने एक सच्चाई को पहचाना और राजनीतिक रूप से इस्तेमाल किया:

- बिहार की राजनीति में **लगभग हर व्यक्ति जातिवादी (Casteist) मानसिकता** से प्रभावित है।
- यही कारण था कि 'जाति और राजनीति' एक-दूसरे से गहराई से जुड़ गए।

समाजवादी, नक्सलवादी और जाति की राजनीति तथा राम मनोहर लोहिया

कांग्रेस के वर्चस्व के ख़िलाफ़ एक मज़बूत विपक्ष खड़ा करने के लिए राम मनोहर लोहिया ने अपनी राजनीतिक ज़मीन पिछड़ी जातियों के कृषक समूहों में तलाश की। उस दौर में उभरते

हुए पिछड़े वर्गों के समूह भी ऐसी राजनीतिक पार्टी की तलाश में थे , जो उनके सामाजिक-राजनीतिक आकांक्षाओं को अभिव्यक्त कर सके। इसी संदर्भ में लोहिया का प्रसिद्ध नारा सामने आया –

"पिछड़ा पावे सौ में साठ... समाजवादी ने बाँधी गाँठ"

(अर्थात् कुल लाभों में 60 प्रतिशत हिस्सेदारी पिछड़े वर्गों और वंचितों को मिलनी चाहिए)।

इस नारे को लोकप्रिय बनाया **कर्पूरी ठाकुर** ने, जो नाई (नाई/हजाम) जाति से आने वाले एक उभरते हुए समाजवादी नेता थे। कर्पूरी ठाकुर स्वयं निचली शूद्र जाति से थे और उनके नेतृत्व ने पिछड़े वर्गों के राजनीतिक जागरण को नई दिशा दी।

लोहिया की '**नए समाजवाद**' की अवधारणा में उदार जनवाद (Liberal Populism) और गांधीवाद तो बरकरार रहा, लेकिन मार्क्सवाद की जगह उन्होंने अपनी वैचारिक समझ विकसित की, जिसे बाद में '**लोहियावाद**' (Lohia-ism) कहा गया। इस विचारधारा ने पिछड़ों और शोषित वर्गों के लगातार चल रहे जाति-आधारित आंदोलनों को समाजवादी राजनीति से जोड़ दिया।

इस तरह, लोहिया ने बिहार की राजनीति का एक **कटु सत्य** पहचान लिया, जिसे अख़बार *The Indian Nation* ने लगभग पचास वर्ष पहले यूँ दर्ज किया था:

"सामान्य धारणा यही है कि लगभग हर कोई जातिवादी है।"

संक्षेप में, लोहिया ने राजनीति में पिछड़ों और वंचितों को केंद्रीय स्थान दिया और उनकी सामाजिक चेतना को राजनीतिक आंदोलन से जोड़ा। यह बिहार की राजनीति में जातिगत समीकरणों के गहरे असर को दिखाता है।

क्या आप चाहेंगे कि मैं इसे [3.1] (जनेऊ आंदोलन और त्रिवेणी संघ) और [3.2] (लोहिया और समाजवाद) को जोड़कर एक **सतत प्रवाह** वाले अध्याय की तरह व्यवस्थित कर दूँ?

1967 से 1989 : कांग्रेस का पतन, उभार और फिर अंत

1967 के चुनाव ऐसे माहौल में हुए जब कांग्रेस का लगभग **दो दशकों से चला आ रहा चुनावी वर्चस्व** पहली बार चुनौती के घेरे में आया। इस चुनाव ने कांग्रेस के लंबे प्रभुत्व का अंत कर दिया और कई राजनीतिक दलों के सहयोग से एक 'ग़ैर-कांग्रेसी सरकार' बनी। यह उस समय की बड़ी राजनीतिक घटना थी , जिसे जनता का अपार समर्थन प्राप्त था।

पिछड़े और दलित मुख्यमंत्री का उदय

- **बी. पी. मंडल** – पिछड़ी जातियों से आने वाले पहले व्यक्ति थे जो बिहार के मुख्यमंत्री बने।
- **बी. पी. शास्त्री** – अनुसूचित जातियों से आने वाले पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मुख्यमंत्री पद संभाला।

यह ऐतिहासिक था क्योंकि पहली बार सामाजिक रूप से वंचित समूहों का नेतृत्व **सत्ता के उच्चतम पद** तक पहुँचा।

1969 के मध्यावधि चुनाव

1969 के मध्यावधि चुनावों ने यह दिखा दिया कि अनुसूचित जातियाँ लगातार कांग्रेस से दूर जा रही हैं।

- कांग्रेस के पास अनुसूचित जाति समुदाय से **15 सांसद** थे।
- लेकिन संयुक्त समाजवादी पार्टी (13) और प्रजा समाजवादी पार्टी (2) को मिलाकर भी उतने ही सांसद बनते थे।
- इससे कांग्रेस की पकड़ कमज़ोर और समाजवादी राजनीति का विस्तार मज़बूत होता गया।

1977 का जनत wave

1977 में 'जनता पार्टी लहर' ने कांग्रेस को पूरी तरह हाशिए पर पहुँचा दिया।

- आरक्षित सीटों (SC reserved constituencies) पर कांग्रेस केवल **2/45** सीटें जीत पाई।

- यह कांग्रेस के लिए ऐतिहासिक गिरावट थी और दलित समाज की दूरी को साफ़ तौर पर दर्शाता था।

नक्सलवादी आंदोलन का उभार

दूसरी ओर, इसी समय **नक्सलवादी आंदोलन** ने भी बिहार की राजनीति और समाज में गहरी पैठ बनाई।

- यह आंदोलन भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन के भीतर **वैचारिक संघर्ष और विभाजन** से निकला।
- 1970 के शुरुआती दशक तक देश के अन्य हिस्सों में नक्सलवाद का असर घट रहा था, लेकिन बिहार में यह 1976 तक मज़बूती से जारी रहा।
- यहाँ तक कि इसने पटना क्षेत्र में हरिजनों (दलितों) का नेतृत्व भी किया।

1980 का दशक: नक्सल बेल्ट

1980 के शुरुआती वर्षों तक बिहार में एक स्पष्ट **'नक्सल बेल्ट'** उभर आया।

- इसमें **भोजपुर, पटना, गया और औरंगाबाद** ज़िले शामिल थे।
- यह क्षेत्र नक्सल गतिविधियों का केंद्र बन गया।

लेकिन, समय के साथ नक्सलवाद को भी नई राजनीतिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा।

लालू प्रसाद यादव और लोकतांत्रिक चुनौती

लालू प्रसाद यादव ने नक्सल आंदोलन को चुनौती देते हुए कहा:

"मैंने साबित किया है कि बैलेट बॉक्स मशीनगनों से ज़्यादा ताक़तवर होते हैं। वोट तय करता है कि कोई व्यक्ति धूल में गिरेगा या हवाई जहाज़ में बैठेगा। मैं असली नक्सलाइट हूँ, जन्मजात, लेकिन लोकतांत्रिक नक्सलाइट।"

यहाँ लालू यह संदेश दे रहे थे कि **लोकतंत्र और चुनावी राजनीति ही सामाजिक बदलाव का वास्तविक माध्यम है**, न कि हिंसक संघर्ष।

1967 से 1989 का दौर बिहार की राजनीति में बेहद उथल-पुथल भरा रहा।

- इस दौरान कांग्रेस का सामाजिक आधार लगातार कमजोर होता गया।
- पिछड़े और दलित समुदाय पहली बार सत्ता के उच्च पदों पर पहुँचे, लेकिन अक्सर यह समझौते की राजनीति का हिस्सा था और इससे समाज की संरचना मूल रूप से नहीं बदली।
- नक्सलवाद ने वंचित तबकों को आवाज़ दी, लेकिन लोकतांत्रिक राजनीति के आगे धीरे-धीरे उसका प्रभाव कम होता गया।

1967 से 1989 : कांग्रेस का पतन, उत्थान और अंत (हिंदी में व्याख्यात्मक रूप)

1967 से शुरू होने वाला दौर बिहार की राजनीति में एक ऐतिहासिक मोड़ लेकर आया। इस अवधि में पहली बार पिछड़े वर्गों का सामाजिक आंदोलन सत्ता के गलियारों तक पहुँचा। अब तक राजनीति में जो स्थान केवल उच्च जातियों का था, उसमें पिछड़े और दलित नेता भी प्रवेश करने लगे।

सत्ता में पिछड़े और दलित मुख्यमंत्री

अगले चार वर्षों में (1967–1971) बिहार ने पाँच ऐसे मुख्यमंत्री देखे जो पिछड़ी जातियों से थे। इसके अलावा, दो मुख्यमंत्री अनुसूचित जातियों से आए और कांग्रेस ने भी अपने दल से पहली बार एक पिछड़ी जाति के मंत्री को शामिल किया। यह परिवर्तन इस बात का संकेत था कि बिहार की सामाजिक संरचना में धीरे-धीरे पिछड़े और दलित समुदायों की राजनीतिक भागीदारी बढ़ रही थी।

अस्थिर सरकारें और समझौते

लेकिन यह भी ध्यान देने योग्य है कि 1967 से 1972 के बीच बिहार में राजनीतिक अस्थिरता बहुत बढ़ गई थी। केवल पाँच वर्षों में बिहार ने नौ अलग-अलग सरकारें देखीं। इनमें से कुछ सरकारें तो केवल तीन दिन और नौ दिन तक ही टिक पाईं। इसका कारण यह था कि पिछड़े और अनुसूचित जाति नेताओं का सत्ता में आना वास्तविक सामाजिक बदलाव नहीं था, बल्कि यह राजनीतिक समझौतों का परिणाम था।

सामाजिक स्थिति में बदलाव का अभाव

हालाँकि इन नेताओं का मुख्यमंत्री या मंत्री बनना ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण था , लेकिन इससे समाज में पिछड़े और दलितों की वास्तविक स्थिति में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं आया। सत्ता में इनकी मौजूदगी अधिकतर प्रतीकात्मक थी। सामाजिक वर्चस्व अब भी उच्च जातियों के हाथों में केंद्रित रहा।

संक्षेप में कहा जाए तो 1967 से 1989 तक का दौर कांग्रेस के पतन और पिछड़ों-दलितों के उभार का गवाह बना, लेकिन इस उभार ने तुरंत सामाजिक ढांचे को नहीं बदला। यह एक लंबी प्रक्रिया की शुरुआत भर थी, जो आने वाले दशकों में अपने वास्तविक रूप में सामने आई।

1974 के जे.पी. आंदोलन से 1990 तक: जाति, छात्र राजनीति और कांग्रेस का अंत (हिंदी व्याख्यात्मक रूप)

लालू प्रसाद यादव के उभार से लगभग 20 वर्ष पहले ही **जयप्रकाश नारायण (जेपी)** ने बिहार की राजनीति का सबसे बड़ा सच उजागर कर दिया था। 1974 में उन्होंने कहा था –

"बिहार में जाति ही सबसे बड़ा राजनीतिक दल है।"

छात्र आंदोलन और इंदिरा गांधी के खिलाफ विद्रोह

1970 के दशक के मध्य तक बिहार कांग्रेस-विरोधी राजनीति का गढ़ बन चुका था।

- 1974 में **बिहार छात्र संघर्ष समिति** (Bihar Chhatra Sangharsh Samiti) का नेतृत्व करते हुए जे.पी. ने पूरे देश में इंदिरा गांधी के शासन के खिलाफ सबसे बड़ा छात्र आंदोलन खड़ा किया।
- इस आंदोलन को शहरी मध्यवर्गीय असंतोष, महँगाई (अगस्त 1974 में मुद्रास्फीति 30% तक पहुँच गई) , और राजनीतिक हत्याओं ने और भड़का दिया।
    - स्वतंत्रता सेनानी **सूरज नारायण सिंह** की हत्या (21 अप्रैल 1973)
    - रेल मंत्री **ललित नारायण मिश्र** की हत्या (2 फरवरी 1975)

विधायी और आर्थिक संकट

1971–1981 के बीच, बिहार में हर साल औसतन **178 अध्यादेश (ordinances)** जारी किए गए , जबकि **सिर्फ 15 विधेयक** पारित हुए। इससे स्पष्ट है कि लोकतांत्रिक संस्थाओं का क्षरण हुआ।

1966–67 से 1977–78 तक बिहार की आर्थिक वृद्धि दर सिर्फ **2.5%** रही। 34 वर्षों की योजनाबद्ध विकास प्रक्रिया के बावजूद बिहार विकास में सबसे नीचे बना रहा।

जाति और सत्ता की नई दिशा

यह आंदोलन प्रत्यक्ष रूप से जाति-आधारित सवालों पर केंद्रित नहीं था , लेकिन इसने सत्ता-हस्तांतरण की प्रक्रिया को गति दी और नए नेताओं को प्रशिक्षण का मैदान उपलब्ध कराया।

- अनुसूचित जाति विधायकों (SC MLAs) की संख्या भी बढ़ी (24/48 और बाद में 33/48 तक पहुँची)।
- लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि वे फिर से कांग्रेस के खेमे में लौट आए।

1980 का दशक: अराजकता और कांग्रेस का अंत

1980 के दशक में , खासकर 1988–90 के बीच, बिहार ने **चार मुख्यमंत्रियों** का कार्यकाल देखा। यह दौर:

- अराजकता और हिंसा
- अभूतपूर्व कुप्रशासन
- अवसरवादी वोट-बैंक राजनीति

से भरा हुआ था।

यही वह समय था जिसने कांग्रेस के स्थायी पतन का रास्ता साफ कर दिया और एंटी-कांग्रेस (गैर-कांग्रेस) शक्तियों को मजबूत बना दिया।

संघर्ष की दो परतें

बिहार का राजनीतिक उथल-पुथल दो प्रकार के संघर्षों का परिणाम था:

1. **राजनीतिक संघर्ष** – राज्यसत्ता पर नियंत्रण के लिए *सवर्ण बनाम पिछड़ा वर्ग*

2. **सामाजिक-आर्थिक संघर्ष** – भूमिहीन *निचली जातियाँ बनाम भूमि मालिक सवर्ण और पिछड़ी जातियाँ।*

सत्ता, जाति और ज़मीन का गठजोड़

बिहार का राजनीतिक अभिजात वर्ग हमेशा से बंटा रहा। चाहे वे **ब्राह्मण, कायस्थ, भूमिहार, राजपूत** हों या **यादव, कोइरी, कुर्मी** – सभी का प्रयास रहा कि उनकी उच्च सामाजिक स्थिति , ज़मीन का स्वामित्व और राजनीतिक शक्ति आपस में जुड़ी रहे।

बिहार की राजनीति का नया व्याकरण: लालू प्रसाद यादव

कर्पूरी ठाकुर के बाद का शून्य और लालू का उभार

1988 में कर्पूरी ठाकुर की असमय मृत्यु के साथ ही बिहार की राजनीति में एक खालीपन पैदा हुआ।

- इससे पहले ही , युवा यादव नेताओं की महत्वाकांक्षा ने उन्हें थका दिया था। **अनूप लाल, श्रीनारायण और लालू प्रसाद यादव** की तिकड़ी ने विधानसभा अध्यक्ष **शिव चंद्र झा** की मदद से उन्हें नेता प्रतिपक्ष के पद से हटा दिया।
- ठाकुर के निधन के बाद यह खालीपन **लालू प्रसाद यादव** ने भरा—न बहुमत से और न सर्वसम्मति से , बल्कि एक **समझौता उम्मीदवार** के रूप में।

उनके बारे में कहा जाने लगा:

"जब तक समोसे में आलू रहेगा , तब तक बिहार में लालू रहेगा।"

छात्र राजनीति से मुख्यमंत्री तक

- लालू ने राजनीति की शुरुआत **पटना यूनिवर्सिटी छात्रसंघ अध्यक्ष** के रूप में की।
- 1974 के **जेपी आंदोलन** में वे सक्रिय थे।
- 1977 में लोकसभा पहुँचे , फिर 1980 और 1985 में बिहार विधानसभा।
- 1988-89 में नेता प्रतिपक्ष बने।
- 1989 में छपरा से लोकसभा जीते।
- मार्च 1990 में, बिना विधानसभा चुनाव लड़े ही मुख्यमंत्री बने।

1989-90: मंडल, मंदिर और सत्ता परिवर्तन

- 1989 लोकसभा और 1990 विधानसभा चुनावों का केंद्र रहा:
  - बोफोर्स घोटाला
  - राजीव गांधी सरकार का भ्रष्टाचार
  - वी.पी. सिंह –देवी लाल – चंद्रशेखर–भाजपा–वाम का गठजोड़
  - **मंडल बनाम मंदिर/कमंडल** की राजनीति

1989 लोकसभा (बिहार):

- जनता दल – 31/54 सीटें
- पिछड़ा वर्ग सांसद = 18 (यादव 11, कुर्मी 3, कोइरी 4)
- ऊँच जाति सांसद = 18 → पहली बार बराबरी

1990 विधानसभा:

- जनता दल – 121 सीटें
- कांग्रेस – 71, भाजपा – 39, CPI – 23, CPM – 6, JMM – 19
- निर्दलीय – 30
- पिछड़ा वर्ग विधायक = 117, ऊँच जाति = 105

1995 विधानसभा:

- पिछड़ा वर्ग विधायक = 161
- ऊँच जाति = 56

जातिगत संरचना (Forward among Backward):

- 1990: यादव 63, कुर्मी 18, बनिया 16, कोइरी 12
- 1995: यादव 86, कुर्मी 27, बनिया 18, कोइरी 13

इन तीन चुनावों (1989–91–95) ने ऊँच जातियों को सत्ता से निर्णायक रूप से बाहर कर दिया।

लालू का नया समीकरण: MY (मुस्लिम-यादव)

लालू ने **पिछड़ों और मुसलमानों** को अपनी राजनीति का केंद्र बनाया।

- उन्हें विश्वास दिलाया कि वे *"उनके आदमी हैं, उनके लिए राज कर रहे हैं।"*
- जातिगत द्वेष और सामाजिक दूरी की उनकी समझ ने उन्हें चुनावी गणित का उस्ताद बना दिया।

लालू का शासन: 'जनता का सीएम'

- खुद को **'साधारण मुख्यमंत्री'** के रूप में प्रस्तुत किया।
- शासन की बजाय **प्रतीकवाद और चुनावी राजनीति** पर ज़ोर।
- मंडल और मंदिर मुद्दों के सहारे सत्ता पर काबिज।
- यादवों (खासकर सम्पन्न वर्ग) को सर्वाधिक लाभ मिला , जबकि अधिकांश पिछड़े गरीब ही रहे।
- फिर भी 2005 तक उनका समर्थन बना रहा, क्योंकि उन्होंने उन्हें **गौरव और हिस्सेदारी की अनुभूति** दी।

उन्होंने शोषणकारी व्यवस्था का **जातिगत चरित्र बदल दिया** – ऊँच जातियों का वर्चस्व तोड़ा और अपनी जाति का वर्चस्व स्थापित किया।

आलोचना और पतन

- बिहार में राजनीतिक हिंसा और चुनावी गड़बड़ी लालू से पहले भी थी , लेकिन उनके शासन में यह और गहरी हुई।
- 15 वर्षों (1990–2005) में वे **समाधान से समस्या** बन गए।
- "जैसे *इंदिरा ही भारत* नहीं थीं, वैसे ही *लालू ही बिहार* नहीं हैं।"

नीतीश कुमार का दौर

- नीतीश सरकार ने **भागलपुर दंगों (1989)** की जाँच तेज की और कई आरोपियों (ज्यादातर यादव) को सजा दिलाई।
- इसने लालू के **मुस्लिम-यादव (MY)** समीकरण पर सवाल खड़े किए।
- नीतीश शासन की प्राथमिकताएँ:
  - क़ानून-व्यवस्था में सुधार
  - सड़कें और बिजली
  - OBC और महिलाओं के लिए आरक्षण
  - अल्पसंख्यकों के लिए 15-सूत्री योजना

नीतीश कुमार सरकार का आगमन

जाति का तत्व **2005 में नीतीश कुमार के बिहार के मुख्यमंत्री बनने** में निर्णायक साबित हुआ। उन्होंने **सवर्ण जातियों , गैर-यादव पिछड़ा वर्ग और दलितों** का व्यापक गठबंधन तैयार किया और इस तरह लालू प्रसाद यादव की राष्ट्रीय जनता दल (RJD) के पारंपरिक वोट बैंक में सेंध लगा दी। लालू–राबड़ी शासन के लंबे दौर के बाद पहली बार बिहार के लोगों ने शासन में **"विकास" का स्वाद** चखा, जिसे नीतीश कुमार ने अपना राजनीतिक मंत्र बनाया।

लेकिन, नीतीश कुमार की असली राजनीतिक कुशलता केवल विकास आधारित शासन तक सीमित नहीं रही , बल्कि उनकी **सामाजिक इंजीनियरिंग की रणनीति** में भी दिखी। उन्होंने **अति पिछड़ा वर्ग आयोग (EBC Commission)** का गठन किया , जिससे पिछड़ा वर्ग श्रेणी और अधिक विभाजित हो गया और गैर-यादव पिछड़ी जातियाँ RJD से अलग होकर नीतीश की ओर झुक गईं। इसी प्रकार उन्होंने दलितों को भी बाँटकर अपने पाले में लाने की कोशिश की और एक नई श्रेणी **"महादलित"** बनाई, जिसमें दलितों के सबसे हाशिए पर खड़े वर्ग शामिल थे।

इस तरह की **जातीय पुनर्गठन रणनीति** ने RJD के पारंपरिक पिछड़ा–दलित गठबंधन को कमजोर कर दिया। इसका असर **2009 के विधानसभा चुनावों** में साफ़ दिखाई दिया , जहाँ पिछड़ा वर्ग और सवर्णों का बड़ा हिस्सा JD(U)-BJP गठबंधन के पक्ष में खड़ा हुआ और नीतीश को **भारी बहुमत** मिला।

हालाँकि, बिहार की राजनीति में जाति निर्णायक तत्व बनी रही। **2015 के विधानसभा चुनाव** तक आते-आते बिहार का चुनावी परिदृश्य एक बार फिर से बदल गया। विभिन्न जातियाँ दो बड़े गठबंधनों में **तेज़ी से ध्रुवीकृत** हो गईं। इस दौरान **अत्यंत पिछड़ा वर्ग (MBCs)** सबसे अहम वोट

बैंक बनकर उभरा , जिन्होंने कई बार **किंगमेकर** की भूमिका निभाई और चुनावी परिणामों को निर्णायक रूप से प्रभावित किया।

इस प्रकार, नीतीश कुमार का शासन बिहार की जातीय राजनीति में **एक नए युग की शुरुआत** बना—जहाँ लालू काल के यादव-प्रधान पिछड़ा वर्गीय वर्चस्व से आगे बढ़ते हुए जातियों का **सूक्ष्म विभाजन और पुनर्गठन** नई शक्ति संतुलन की कुंजी बन गया।

दलितों का उभार और रामविलास पासवान

रामविलास पासवान भारतीय राजनीति के उन दुर्लभ नेताओं में गिने जाते हैं जिन्होंने पाँच दशकों से अधिक समय तक न केवल सत्ता में अपनी मौजूदगी दर्ज कराई बल्कि दलित राजनीति को एक नई दिशा दी। वे विशेष रूप से **पासवान जाति** (दलित वर्ग) के बीच सबसे लोकप्रिय नेता रहे और इस जनाधार को किसी भी पार्टी को ट्रांसफर करने की अद्वितीय क्षमता रखते थे। यही कारण था कि अपेक्षाकृत छोटे आकार की पार्टी (लोक जनशक्ति पार्टी – LJP) के बावजूद पासवान हमेशा सत्ता में भागीदारी निभाते रहे।

जीवन और राजनीतिक यात्रा

- जन्म: **1946, खगड़िया (बिहार)**।
- चयन: पासवान पहले पुलिस सेवा के लिए चुने गए , लेकिन राजनीति का रास्ता चुना।
- पहली जीत: **1969** में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के टिकट पर विधायक बने।
- राष्ट्रीय स्तर: **1970 के दशक के मध्य** में वे कर्पूरी ठाकुर और राज नारायण जैसे समाजवादी नेताओं के अनुयायी बने और जल्द ही राष्ट्रीय राजनीति में उभरे।
- **जेपी आंदोलन (संपूर्ण क्रांति)** में सक्रिय भागीदारी की और **1975-77 की इमरजेंसी** में जेल भी गए।
- **1977 में हाजीपुर लोकसभा सीट** से रिकॉर्ड मतों से जीत दर्ज की , जो लंबे समय तक गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में दर्ज रहा।

संसदीय और मंत्री पद

- **8 बार लोकसभा सदस्य** और **2 बार राज्यसभा सदस्य** रहे।
- कई प्रधानमंत्रियों की सरकार में मंत्री बने – वी.पी. सिंह , एच.डी. देवगौड़ा , अटल बिहारी वाजपेयी , मनमोहन सिंह और नरेंद्र मोदी।
- जिन मंत्रालयों का कार्यभार संभाला:
  - रेलवे
  - रसायन एवं उर्वरक
  - संचार
  - संसदीय कार्य
  - खाद्य, नागरिक आपूर्ति और सार्वजनिक वितरण

राजनीतिक लचीलापन

रामविलास पासवान को अक्सर "**मौसम विज्ञानी (weatherman)**" कहा जाता था , क्योंकि वे बदलते राजनीतिक हालात को समझकर चुनाव से पहले सही गठबंधन करने में माहिर थे।

- 2002 में उन्होंने **गुजरात दंगों** के बाद वाजपेयी सरकार से इस्तीफ़ा दे दिया।
- बाद में कांग्रेस-नीत **UPA** का हिस्सा बने।
- **2014 में** पुनः भाजपा-नीत एनडीए में शामिल हुए, जिसका श्रेय उन्होंने अपने बेटे **चिराग पासवान** को दिया।

दलित राजनीति और संगठन

- 1983 में **दलित सेना** का गठन किया , जिसका उद्देश्य दलितों को संगठित करना था।
- जब **कांशीराम और मायावती** बहुजन समाज पार्टी के माध्यम से उत्तर भारत में दलित राजनीति को नया आकार दे रहे थे, उसी समय बिहार में पासवान ने दलितों की आवाज़ को मजबूत किया।
- इस प्रकार वे दलित राजनीति के एक प्रमुख स्तंभ बने।

विरासत और योगदान

- **हाजीपुर सीट पर जीत का रिकॉर्ड** लंबे समय तक उनके नाम रहा।

- अपने बेटे **चिराग पासवान** को राजनीति में स्थापित किया , जिन्होंने 2014 में जमुई से जीत दर्ज की।
- सदैव वंचित वर्गों की समस्याएँ उठाने वाले **जमीनी नेता** रहे।
- सभी दलों के नेताओं के साथ उनके अच्छे संबंध रहे , जिससे वे हर वैचारिक ध्रुवीकरण के बावजूद सत्ता में बने रहे।

निष्कर्ष: रामविलास पासवान ने बिहार ही नहीं , बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर दलित राजनीति को नई पहचान दी। उनकी सबसे बड़ी ताक़त थी – **दलित जनाधार को संगठित रखना और उसे सत्ता की साझेदारी में बदलना।** उनकी रणनीति और लचीलापन उन्हें भारतीय राजनीति के सबसे प्रभावशाली दलित नेताओं में शामिल करता है।

ग़ैर-पासवान दलित गठबंधन और बिहार की राजनीति

बिहार में कुल 22 दलित जातियाँ हैं, जो राज्य की लगभग **16% आबादी** बनाती हैं। इनमें से **पासवान जाति** (जिसे दुबेहरिया या दुसाध भी कहा जाता है) सबसे मज़बूत और संगठित समूह है। यही कारण है कि पासवान , **रामविलास पासवान** की *लोक जनशक्ति पार्टी (LJP)* का मुख्य वोट बैंक रहे हैं। चूँकि LJP अक्सर **भारतीय जनता पार्टी (भाजपा)** की सहयोगी रही है , इसलिए पासवान जाति का राजनीतिक महत्व और भी बढ़ जाता है। पासवान आबादी राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग **4%** हिस्सा है।

इसके विपरीत, मुख्यमंत्री **नीतीश कुमार** ने लंबे समय से **ग़ैर-पासवान दलित जातियों** (जैसे– मुसहर, भुइयाँ, रजवार आदि) को अपने साथ जोड़ने की कोशिश की। उन्होंने इन्हें **"महादलित"** का दर्जा दिया और इनके लिए अलग-अलग **विशेष कल्याणकारी योजनाएँ व पैकेज** शुरू किए। हालांकि नीतीश स्वयं एक **कुर्मी जाति (OBC)** से आते हैं, जिससे दलित समाज के साथ उनकी "प्राकृतिक सामाजिक निकटता" उतनी नहीं बन पाई।

इसके विपरीत , **जीतनराम मांझी** , जो **मुसहर जाति** (महादलित समूह) से आते हैं , इस सामाजिक दूरी से मुक्त रहे। मांझी ने अपनी *दलित पहचान* को बार-बार उजागर किया और खुद को एक **दलित प्रतीक** के रूप में स्थापित किया। उनका *प्रो-डालित (Pro-Dalit)* भाषण और नीतिगत रुख़ उन्हें राज्य की **दलित राजनीति का चेहरा** बनाने में सफल रहा। इस तरह उन्होंने यह संकेत देने में सफलता पाई कि **सत्ता गठबंधन अब सामाजिक न्याय की अवधारणा को समाज के सबसे निचले तबके तक ले जाने का इरादा रखता है।**

जाति और बिहार की राजनीति व शासन पर प्रभाव

बिहार चुनाव यह साफ़ दर्शाते हैं कि राज्य की **राजनीति और शासन पर जाति का गहरा असर** है। हालाँकि सभी दलों ने अपने *मुख्य जातीय वोट बैंक* से बाहर जाकर भी समर्थन पाने की कोशिश की, लेकिन जातीय पैटर्न साफ़ नज़र आते हैं।

- **भाजपा (BJP)** ने जिन उम्मीदवारों को टिकट दिया , उनमें से लगभग **आधा हिस्सा अगड़ी जातियों (forward castes)** का था। *लोकनीति-CSDS* के *पोस्ट-पोल सर्वेक्षण* में पाया गया कि **अधिकांश ऊँची जाति के वोटर NDA** (भाजपा-नीतीश गठबंधन) के साथ रहे।
- **राजद (RJD)** ने अपने लगभग आधे टिकट **यादवों और मुसलमानों** को दिए, और इन दोनों समुदायों ने पार्टी को भारी समर्थन दिया।
- **कुर्मी और अतिपिछड़ी जातियों (EBCs)** का बड़ा हिस्सा **जदयू (JD-U)** के साथ रहा।

इससे यह स्पष्ट होता है कि चुनाव में जाति निर्णायक भूमिका निभाती है। लेकिन सवाल उठता है—क्या शासन की नीतियों पर भी जाति आधारित झुकाव दिखता है?

ऐतिहासिक दृष्टि से सत्ता का जातीय संतुलन

- **स्वतंत्रता के बाद शुरुआती दशकों** में बिहार की राजनीति पर **अगड़ी जातियों (विशेषकर भूमिधारी ज़मींदार वर्ग)** का दबदबा रहा।

- 1990 तक **40% से अधिक** सत्ता में ऊँची जातियाँ (ब्राह्मण , राजपूत, कायस्थ, भूमिहार) शामिल थीं।
- इन दशकों में राज्य का **एक-तिहाई से अधिक बजट कृषि और सिंचाई** में निवेश हुआ, क्योंकि यह क्षेत्र ऊँची जातियों के हित में था।

1950 के दशक के बाद , **ज़मींदारी उन्मूलन और हरित क्रांति** से एक नया **OBC मध्यमवर्ग** उभरा। जैसे-जैसे ऊँची जातियों का प्रभुत्व कम हुआ, वैसे-वैसे **यादव, कुर्मी और कोइरी जातियाँ** राजनीतिक रूप से संगठित हुईं।

यही सामाजिक संघर्ष कांग्रेस पार्टी के भीतर भी दिखा। जैसा कि **सैमुअल हंटिंगटन** ने कहा था , *जब सामाजिक चेतना और राजनीतिक उठान को संभालने के लिए संस्थागत ढाँचे कमज़ोर हों , तब राजनीतिक अराजकता बढ़ती है।*

1967 से 1972 के बीच बिहार ने **9 बार सरकार बदली** और **3 बार राष्ट्रपति शासन** भी लागू हुआ। कांग्रेस के पतन के बाद छोटे दलों के उभरने का रास्ता खुला।

जेपी आंदोलन और OBC राजनीति का उदय

1970 के दशक में **जयप्रकाश नारायण आंदोलन (JP Movement)** उभरा। इसी आंदोलन से बिहार के कई बड़े OBC नेता, जैसे– **लालू प्रसाद यादव और नीतीश कुमार** निकले।

- **1977**: बिहार की पहली *ग़ैर-कांग्रेसी सरकार* (करपूरी ठाकुर के नेतृत्व में) बनी।
- **1990**: बिहार की पहली *OBC बहुल सरकार* (लालू प्रसाद के नेतृत्व में) बनी। → यह चुनाव **अगड़ी जातियों के प्रभुत्व के अंत** का प्रतीक था।

1990 के बाद—सामाजिक न्याय बनाम विकास का प्रश्न

- **राजद सरकार (1990–2005)**:
  - शासन व्यवस्था कमज़ोर हुई , *विकास खर्च* भी घटा।
  - लेकिन इस दौर में **दलित-पिछड़ों की राजनीतिक भागीदारी और सामाजिक न्याय की राजनीति** मज़बूत हुई।
  - विधानसभा में पहली बार *पहचान और सामाजिक न्याय* पर चर्चा शुरू हुई।
  - निचली जातियों के अधिकारियों की नियुक्ति और पदोन्नति सरकार का मुख्य एजेंडा बना।
- **नीतीश कुमार का दौर (2005 से आगे)**:
  - भाजपा-जदयू गठबंधन के साथ सत्ता में आए।
  - ऊँची जातियों की राजनीतिक हिस्सेदारी बढ़ी।
  - *आर्थिक निवेश और बुनियादी ढाँचा* (खासतौर पर सड़कों) पर सबसे अधिक ध्यान दिया गया।
  - केंद्र से मिलने वाले संसाधनों के कारण *सामाजिक क्षेत्रों* (शिक्षा, स्वास्थ्य) पर भी ख़र्च बढ़ा।

निष्कर्ष

बिहार की राजनीति में जाति हमेशा निर्णायक रही है।

- **राजद शासन**: सामाजिक न्याय पर ज़ोर, लेकिन विकास ठप।
- **नीतीश शासन**: विकास पर ज़ोर, लेकिन ऊँची जातियों की हिस्सेदारी फिर बढ़ी।

भविष्य के लिए संकेत यह है कि—

1. केंद्र और राज्य दोनों जगह भाजपा की मौजूदगी से बिहार को आर्थिक संसाधन अधिक मिलेंगे।
2. लेकिन इन संसाधनों का बड़ा हिस्सा *आर्थिक क्षेत्रों (सड़क , बुनियादी ढाँचा)* पर जाएगा, न कि सामाजिक न्याय की राजनीति पर।

संपादकीय स्रोत और टीवी रिपोर्ट

1 अक्टूबर 2014 : बिहार में मंदिर की "शुद्धि" घटना

बिहार में जातिगत भेदभाव पर एक गंभीर घटना 2014 में सामने आई। यह मामला उस समय के मुख्यमंत्री **जीतन राम मांझी** (जो महादलित

समुदाय मुसहर से आते हैं) से जुड़ा था। मांझी ने सितंबर 2014 में मधुबनी जिले के एक प्रसिद्ध मंदिर का दौरा किया। उनके जाने के बाद स्थानीय मीडिया में यह खबर फैली कि मंदिर को "शुद्ध" किया गया और वहां की मूर्तियों को धोया गया।

मांझी ने इस खबर पर कड़ा संज्ञान लिया और कहा कि उन्होंने **मंडल आयुक्त और पुलिस महानिरीक्षक** को इसकी जांच का आदेश दिया है ताकि सच्चाई सामने आ सके। उन्होंने कहा कि अगर यह सच साबित हुआ तो दोषियों को सख्त सजा दी जाएगी।

हालांकि संविधान और कानून के अनुसार "अस्पृश्यता" को 1955 में अपराध घोषित कर दिया गया था , लेकिन सामाजिक और मानसिक स्तर पर यह भेदभाव आज भी जारी है। दलित समाज को शिक्षा, रोजगार और सामाजिक संबंधों में लगातार भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

मांझी बिहार के तीसरे दलित मुख्यमंत्री थे (1947 के बाद से) और उनके मुख्यमंत्री बनने के बाद जातिगत मुद्दे और भी राजनीतिक विमर्श का केंद्र बने। इस घटना की आलोचना विभिन्न राजनीतिक दलों ने की। दलित नेता और उस समय के केंद्रीय मंत्री **राम विलास पासवान** ने कहा—

"अस्पृश्यता अपराध है। इसे साधारण नागरिकों के साथ भी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। जब मुख्यमंत्री खुद कहते हैं कि उनके जाने के बाद मंदिर को धोया गया , तो इससे ज्यादा शर्मनाक और क्या हो सकता है।"

यह घटना उस गहरी मानसिकता को उजागर करती है जिसमें दलितों को सामाजिक रूप से आज भी "अछूत" माना जाता है, भले ही वे उच्च संवैधानिक पदों पर क्यों न हों।

4 नवम्बर 2020 : "राजनीतिक प्रतिनिधित्व के बिना हमारी दशा नहीं बदलेगी"— डोम समुदाय

बिहार में अनुसूचित जातियों के भीतर **महादलित श्रेणी** बनाई गई थी , जिसमें मुख्यमंत्री **नीतीश कुमार** ने सबसे वंचित जातियों को शामिल किया। इन्हीं में से एक है **डोम समुदाय**, जिसे परंपरागत रूप से बांस से बने घरेलू सामान — **टोकरी, सूप, दौरा और सजावटी वस्तुएं** बनाने वाला माना जाता है।

2011 की जनगणना के अनुसार—

- पटना में डोमों की संख्या लगभग **17,000** थी।
- पूरे पटना जिले में अनुसूचित जाति की कुल आबादी **9.20 लाख** थी।
- पूरे बिहार में रविदास (जिन्हें मायावती के समुदाय के रूप में पहचाना जाता है) और दुशाध (रामविलास पासवान की जाति) लगभग **90 लाख** थे।
- मुसहर/मांझी लगभग **26 लाख**।
- जबकि डोमों की कुल संख्या केवल **1.42 लाख** के आसपास थी।

विडंबना यह है कि समाज उन्हें आज भी "अछूत" मानता है , लेकिन उनके बनाए **सूप और दौरे** बिहार के सबसे पवित्र त्यौहार **छठ पूजा** में अनिवार्य रूप से प्रयोग होते हैं।

डोम समुदाय के लोगों का कहना है कि उनकी दशा राजनीतिक प्रतिनिधित्व के अभाव में नहीं सुधर रही। नीतीश कुमार ने उन्हें महादलित श्रेणी में शामिल कर राजनीतिक पहचान तो दी , लेकिन सामाजिक स्थिति में वास्तविक बदलाव अभी भी बहुत सीमित है।

संक्षेप में, इन दोनों घटनाओं—

1. मांझी के मंदिर प्रकरण (2014)
2. और डोम समुदाय की राजनीतिक उपेक्षा (2020)

से स्पष्ट होता है कि **दलित और महादलित राजनीति** सिर्फ चुनावी रणनीति तक सीमित रही है। सामाजिक स्तर पर जातिगत भेदभाव अब भी गहराई से मौजूद है , और इसे बदलने के लिए केवल आरक्षण या श्रेणियों का पुनर्गठन पर्याप्त नहीं है , बल्कि **मानसिकता में परिवर्तन** और **राजनीतिक प्रतिनिधित्व** दोनों जरूरी हैं।

बिहार की राजनीति और जाति प्रश्न: एक व्याख्यात्मक अध्ययन

आज बिहार लगभग 10 करोड़ लोगों का हृदय-प्रदेश है , जिनमें से लगभग **40 प्रतिशत लोग**

गरीबी रेखा के नीचे हैं और करीब **90 प्रतिशत अब भी ग्रामीण जीवन** जीते हैं। इस सामूहिक सामाजिक-आर्थिक स्थिति की जड़ें **औपनिवेशिक काल** में डाली गईं, जब **1793 के स्थायी बंदोबस्त (Permanent Settlement)** के तहत अंग्रेज़ों ने **जमींदारी व्यवस्था** (rent-seeking landlords) स्थापित की। इसने बिहार को ब्रिटिश राज के दौरान एक **'क्लासिक एन्क्लेव अर्थव्यवस्था'** बना दिया, जहाँ विकास का केंद्र भूमि से मिलने वाले किराये पर आधारित रहा और व्यापक जनहित उपेक्षित रह गया।

स्वतंत्रता के बाद भी बिहार कई विरोधाभासी नीतियों और संघर्षों का केंद्र बना।

- **फ्रेट इक्वलाइज़ेशन स्कीम** (Freight Equalization Scheme) ने बिहार के औद्योगिक विकास को रोक दिया।
- **जाति और वर्ग संघर्षों** का विस्फोट हुआ।
- वंचितों को सत्ता और भौतिक लाभों का स्थानांतरण हुआ।
- राज्य तंत्र संस्थागत रूप से कमजोर और विकास में पिछड़ा रहा।

बिहार का सामाजिक ढाँचा बड़े जातीय समूहों से निर्मित है:

- 14% **द्विज (ऊँची जातियाँ)**
- 39% **पिछड़े वर्ग** (20% ऊपरी पिछड़े, 19% निचले पिछड़े)
- 12% यादव, 3.5% कुर्मी, 4.1% कोइरी
- 15% दलित
- 16% मुस्लिम

इन सबने मिलकर **जाति और वर्ग संघर्ष की निरंतरता** के ढाँचे में काम किया।

कांग्रेस से लेकर लालू और नीतीश तक

- आज़ादी के बाद कांग्रेस ने **'चरम सीमाओं का सामाजिक गठबंधन'** बनाया, जिसमें ऊँची जातियों का दबदबा रहा।
- 1970–80 के दशक में **कर्पूरी ठाकुर** ने पिछड़ों की राजनीति को नया आधार दिया।
- इसके बाद **लालू प्रसाद यादव** ने इसे 'लोकतांत्रिक उभार' का रूप दिया। उनकी राजनीति को एक प्रकार की **गरीब-आधारित पुनर्वितरण गठबंधन** कहा जा सकता है।
- 2005 के बाद से **नीतीश कुमार** ने एक **'विस्तृत गरीब गठबंधन' (Dalits + Upper castes)** की राजनीति प्रस्तुत की।

2015 के विधानसभा चुनावों में साफ़ दिखा कि **पहचान (Identity)** अब भी राजनीतिक दलों के लिए मुख्य mobilization का साधन है।

नीतीश कुमार और 'बिहारी पहचान'

कहा जाता है कि नीतीश कुमार की **वर्ग और जाति-तटस्थ आर्थिक नीतियों** को व्यापक उप-राष्ट्रीय समर्थन मिला है।

- उन्होंने **महिलाओं, अति-पिछड़ों और महादलितों** को पंचायत चुनावों में आरक्षण दिया।
- इसने पहली बार **'बिहारी पहचान'** की भावना को जन्म दिया।
- इसमें **अतिपिछड़े वर्ग**, दलित और मुस्लिम समाज के **अजलाफ और अरज़ल** समुदाय शामिल रहे।

दूसरी ओर, कई विद्वानों का मत है कि:

- लालू की **जाति-आधारित राजनीति** और
- नीतीश की **सामाजिक इंजीनियरिंग आधारित कल्याणकारी राजनीति** — दोनों एक-दूसरे के पूरक (complementary) हैं।

इससे दलित राजनीति को एक तरह की **मुक्तिकामी दिशा** मिलती है।

लोकतांत्रिक सशक्तिकरण और जातीय यथार्थ

1989 के बाद से लालू प्रसाद यादव का उभार एक **लोकतांत्रिक सशक्तिकरण** और **ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था के टूटने** का प्रतीक बना। बिहार का समाज लंबे समय से गहरे जातीय विभाजनों से जकड़ा रहा है।

- 1937 से कांग्रेस ने ऊँची जातियों को सत्ता में शामिल करने, अनुसूचित जाति/जनजाति और धीरे-धीरे पिछड़ों को आरक्षण देने, और मुसलमानों को

आंशिक सांस्कृतिक स्वायत्तता देने की रणनीति अपनाई।

- इससे समाज की **कड़वी वास्तविकता (जातीय असमानता)** पूरी तरह नहीं बदली, लेकिन **सामाजिक गतिशीलता (social mobility)** बढ़ी।

लोकतांत्रिक भारत में **जाति** हमेशा सत्ता तक पहुँच और हितों की रक्षा का साधन रही है।

- इससे जातियों का सामाजिक वर्चस्व बढ़ा।
- लोकतंत्र, औद्योगिकीकरण और आर्थिक पुनर्वितरण ने जातीय संघर्ष को कुछ हद तक नरम किया , लेकिन **जातीय आधार** अब भी कायम है।

बिहार में संघर्ष हमेशा **आर्थिक अभाव** से नहीं, बल्कि **जाति आधारित बहिष्करण और हाशियाकरण** की गहरी भावना से पैदा हुए। इसलिए बिहार में परिवर्तन केवल आर्थिक विकास से नहीं , बल्कि **सामाजिक और राजनीतिक रूपांतरण** से संभव है।

जाति और राजनीति: एक वास्तविकता

लालू प्रसाद यादव ने *Economic Times* को दिए एक साक्षात्कार में कहा था:

“जाति बिहार में सबसे बड़ा सितारा है। बिहार की राजनीति का केंद्र बिंदु जाति है। आप जाति को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते , यह भारत की हकीकत है।”

यह उद्धरण बिल्कुल सटीक रूप से बिहार की राजनीति का यथार्थ दर्शाता है।

संदर्भ सूची (Bibliography)

[1] कुमार, झा (1991). *बिहार: राजनीति का अपराधीकरण*. दिल्ली: डी. के. पब्लिशर्स.

[2] कुमार, झा (1996). *सत्ता के सूत्रधार*. दिल्ली: डी. के. पब्लिशर्स.

[3] राकेश, अंकित (2018). *Caste Politics in Bihar: In Historical Continuum. History and Sociology of South Asia*.

[4] झा, एच. (2000). "Promises and lapses: Understanding and experiences of Schedule Castes in Bihar in historical perspective." *Journal of Indian School of Political Economy*, खंड XII (3-4).

[5] दत्ता, के. के. (1974). *बिहार में स्वातंत्र्य आन्दोलन का इतिहास* (खंड 2). पटना: बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.

[6] सिंह, आर. (2005). *बिहार के मुसहर*. पटना.

[7] शाह, घनश्याम (1977). "Revolution, Reform or Protest? A Study of the Bihar Movement, I, II and III." *Economic and Political Weekly*, 605-14, 642-55, 695-702 (9 अप्रैल, 16 अप्रैल और 23 अप्रैल).

[8] Political Special, File no. 317/1932. पटना: बिहार स्टेट आर्काइव्स.

[9] कोठारी, राजनी (1970). *Caste and Politics in India*. दिल्ली: ओरिएंट लॉन्गमैन.

[10] कुमार, संजय; संजीर आलम एवं धनंजय जोशी (2008). "Caste dynamics and political process in Bihar." *Journal of Indian School of Political Economy*, खंड 20 (1&2): 1-32.